THE TIMES OF INDIA

Date: 06-03-17

Modi in Israel?

A visit by the PM will be an appropriate way to mark 25 years of formal ties

Towards the middle of this year, Prime Minister Narendra Modi is expected to embark on an official visit to Israel. It will be the first visit by an Indian PM since the countries normalised relations in 1992. In the context of India's growing ties with Israel, this will be an important moment and should serve as an occasion to expand bilateral engagement.Israel has emerged, along with Russia and US, as one of India's most important defence equipment suppliers. In addition, it has proved to be one of the most reliable partners India has on overall security links including intelligence sharing.

Commercial ties have widened to span areas such as technology, solar energy and agriculture. Israel is keen on negotiating a free trade agreement with India. Even if merchandise trade between the countries is modest now, the commercial engagement can have far reaching impact in future.During the visit of Israel's President Reuven Rivlin to India in November, steps were taken to tap Israel's experience in water management and agriculture. Israeli technology in these areas is advanced and can play an important role in helping India cope with its challenges.

Modi has brought a sense of purpose to India's engagement with West Asia. He has visited UAE, Saudi Arabia, Iran and Qatar. In each instance it was a stand-alone visit, signifying the importance of bilateral ties.Reports suggest that Modi's visit to Israel will be a stand-alone visit and will not include a visit to Palestine. India's long standing position on Palestine remains unchanged, but it is appropriate to de-hyphenate the relationship. It will be consistent with the growing importance of Israel in India's diplomatic outreach. India's foreign policy should be underpinned by pragmatism even as it sticks to a principled stand consistent with existing positions.Defence equipment manufacturing is an important strand of NDA's 'Make in India' project. In this context, the two countries must build on the decision to jointly develop a medium range surface-to-air missile which will be manufactured in India.A visit by Modi will not only provide a fillip to new areas of engagement, it will also serve to strengthen ties in areas such as tourism which have vibrant potential. Israel has emerged as an important partner and a trip there by an Indian PM is overdue.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 06-03-17

The Challenge of non-communicable disease

The findings of the National Family Health Survey-4 bring good news: infant mortality has fallen, the sex ratio has improved and vaccine coverage has spread. It also brings bad news: non-communicable diseases are gaining ground — the incidence of diabetes is 20.3 per cent and that of hypertension, 22.2 per cent. These, once regarded as the diseases of the rich, call for new thinking and an innovative response.These chronic diseases, left medically unmanaged, increase the possibility of infectious diseases. That at least one-fifth of the

population suffers from chronic diseases making them vulnerable to infectious, life-threatening diseases presents a public health challenge. The Indian healthcare system, though woefully inadequate in terms of access and delivery, has been more concerned with tackling infectious diseases. While these can be tackled through mission-mode vaccination efforts, diseases like hypertension and diabetes require sustained medical care, besides lifestyle modification.

Given the high levels of out-of-pocket expense in healthcare, coupled with poor access and delivery, the poor are more likely to go without medical care, leading to higher instances of disability that would impact their productivity and income earning capability, besides pushing them into a debt trap as they borrow to treat illnesses.The government needs to focus on improving healthcare access and delivery, ensuring availability of medical personnel and affordable medicine to manage chronic ailments. It needs to take serious measures to improve sanitation and address air and water pollution that contribute to aggravate non-infectious diseases. All this requires higher levels of investment, smart policy, leveraging of available funds and accountability in the system.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 06-03-17

शासन के तरीकों में बदलाव की व्यवस्था हो पाएगी कारगर!

आर्थिक वृद्धि पर नोटबंदी के असर को लेकर छिड़ी चर्चाओं के बीच इस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि पिछले कुछ महीनों से भारत में आर्थिक नीतियों को लेकर अलग तरह के बदलाव देखे जा रहे हैं। हालांकि ये बदलाव अपने असर को लेकर उतने व्यापक नहीं हैं जितने वर्ष 1991 में देखने को मिले थे। लेकिन मौजूदा बदलावों के असर के सार्थक होने और केंद्र एवं राज्य के आर्थिक शासन पर इनके भावी असर को लेकर शायद ही संदेह होना चाहिए।अगर 1991 में औद्योगिक और व्यापारिक नीतियों में आमूलचूल बदलाव देखे गए थे तो ताजा बदलाव आर्थिक नीतियों को तय करने वाले ढांचे को नए सिरे से गढ़ेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में इन नीतिगत बदलावों का लोगों और राजनीतिक प्रतिष्ठानों से की जाने वाली उनकी उम्मीदों पर भी बुनियादी असर दिखेगा। निर्वाचित प्रतिनिधियों की राजनीतिक ताकत को कुछ नियमों के समूह से परिभाषित किया जा रहा है। प्रतिनिधियों की इस ताकत को प्राय: नए-नवेले संस्थानों और निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को हस्तांतरित किया जा रहा है। ये बदलाव उस समय घटित हो रहे हैं जब सरकार आर्थिक नीतियों को तय करने में अपना वर्चस्व स्थापित करने में लगी है और लोग भी कड़े फैसले लेने के बारे में बन रही उसकी छवि को पसंद कर रहे हैं। गत 8 नवंबर को नोटबंदी का ऐलान सरकार का ऐसा ही एक सख्त फैसला था जिसके अर्थव्यवस्था पर असर से शायद ही इनकार किया जा सकता है। लेकिन विधानसभा चुनावों के राजनीतिक विमर्श से लगता है कि अधिकतर राजनीतिक पंडितों के अनुमान के विपरीत नोटबंदी उतना अहम मुद्दा नहीं बन पाया है।

इसके बरक्स एडलमैन की तरफ से कराए गए नवीनतम भरोसा सर्वे को रखें तो इसे नकारा नहीं जा सकता है कि सख्त कदम उठाने की काबिलियत रखने वाली मजबूत सरकार को लोग पसंद कर रहे हैं। एडलमैन सर्वे से पता चलता है कि सरकार के प्रति सम्मान की भावना में सर्वाधिक वृद्धि हुई है और इस मामले में सरकार ने गैर-सरकारी संगठनों, कारोबार जगत और मीडिया को भी पीछे छोड़ दिया है। यहां हमें यह ध्यान रखना होगा कि एडलमन का सर्वे नोटबंदी के ऐलान के ठीक बाद हुआ था और उसमें लोगों की पीड़ा पूरी तरह उभरकर सामने नहीं आई थी। फिर भी भारत सरकार की आर्थिक नीति के मोर्चे पर हो रही घटनाएं इसके विपरीत रुझान की ओर इशारा करती हैं। पिछले कुछ

महीनों में उठाए गए विभिन्न कदमों से राजनीतिक प्रतिष्ठान या सरकार में बैठे निर्वाचित प्रतिनिधियों की शक्ति काफी हद तक संशोधित की गई है या सीमित भी की गई है। खास तौर पर कुछ महत्त्वपूर्ण आर्थिक नीतिगत फैसलों में यह देखने को मिला है। मसलन, कई वित्त आयोगों ने केंद्र सरकार के राजकोषीय ढांचे को पुनर्परिभाषित करते हुए केंद्रीय कर राजस्व में राज्यों की हिस्सेदारी बढ़ाने और संसाधनों के आवंटन के लिए नए मानक तय करने को कहा है। इन सुझावों को न तो केंद्र और न ही राज्य नजरअंदाज कर सकते हैं। राज्यों को केंद्र से आवंटन बढऩे का यह भी मतलब है कि केंद्र की तरफ से प्रायोजित योजनाओं के मद में राज्यों को किए जाने वाले आवंटन का नया फॉर्मूला बनाया गया है। इस तरह पहले जो आवंटन केंद्र में सत्ता पर काबिज दल या वित्त मंत्री की पसंद वाली कुछ निश्चित योजनाओं के लिए होता था, अब वह एक सुव्यवस्थित फॉर्मूले से तय होता है। यह एक स्वागत योग्य कदम है लेकिन इससे केंद्र की सत्तारूढ़ पार्टी या वित्त मंत्री की निर्बाध शक्ति में भी कमी आती है। अब जरा अत्यधिक भावात्मक और राजनीतिक रूप से संवेदनशील मुद्रास्फीति की बात करते हैं। अतीत में कई चुनाव महंगाई के नाम पर ही जीते या हारे गए हैं। प्रत्येक सरकार मुद्रास्फीति की दर अगर खत्म करने, नहीं तो कम-से-कम कम करने की जुगत में लगी रहती है। अब राजनीतिक प्रतिष्ठान ने कानून के तहत यह तय कर दिया है कि पांच वर्षों के लिए मुद्रास्फीति की स्वीकार्य सीमा क्या होनी चाहिए? इस तरह कानून की सीमा में मुद्रास्फीति को बांधने से न सिर्फ सरकार को राहत मिलेगी बल्कि महंगाई भी तय सीमा में बनी रहेगी। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि एक सियासी मुद्दे के तौर पर मुद्रास्फीति नेताओं के लिए किसी चुनावी मुकाबले में ताल ठोकने का जरिया नहीं रह पाएगी। मौद्रिक नीति का लक्ष्य तय करने के लिए समिति का गठन करना सरकारी ढांचे में आए बदलाव को भी रेखांकित करता है। भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर का मौद्रिक नीति के संदर्भ में अंतिम अधिकार होना अब अतीत की बात हो गई है। पुरानी व्यवस्था में सरकार रिजर्व बैंक गवर्नर को अपनी पसंद के मुताबिक मौद्रिक नीति बनाने के लिए प्रभावित करने की कोशिश करती रही है।

अधिकांश मौकों पर वित्त मंत्री मौद्रिक नीति और अन्य वित्तीय नीतियों की दिशा तय करते समय गवर्नर को प्रभावित करने में सफल रहते थे। जो गवर्नर इन सलाहों पर ध्यान नहीं देते थे, उनके लिए रिजर्व बैंक में अधिक दिनों तक टिक पाना मुश्किल हो जाता था। अब नीति तय करने का जिम्मा समिति को सौंपे जाने के बाद वित्त मंत्री और रिजर्व बैंक गवर्नर दोनों की ही भूमिका सीमित हो गई है। केंद्र के स्तर पर वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) परिषद के गठन से भी कर दरों को तय करने में वित्त मंत्रियों की शक्तियां काफी कम हो गई हैं। अब वित्त मंत्रियों के बजाय जीएसटी परिषद ही तय करेगी कि दर को कम करना है या बढ़ाना है। केंद्र ने राजकोषीय घाटे को एक नियंत्रित सीमा में रखने के लिए राजकोषीय परिषद की भी अवधारणा पेश की है। कहा जा रहा है कि यह परिषद केंद्रीय वित्त मंत्री के फैसलों पर कड़ी नजर रखेगी और उसकी समीक्षा करेगी। सभी मुद्दों को एक साथ रखकर देखें तो यही लगता है कि अब नीति-निर्माण का एक नया परिवेश उभर रहा है जहां राजनेताओं की शक्ति को परिभाषित किया जा रहा है और उन्हें पूर्व-निर्धारित निर्देशों का पालन करना होगा। सरकार की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि यह कब तक जारी रहता है और राजनेता इसकी खामियां तलाशने में कब तक कामयाब हो पाते हैं?

Date: 06-03-17

खामी भरे प्रावधान

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) परिषद की दो दिन के लिए निर्धारित बैठक जब पहले ही दिन समाप्त हो गई तो प्रसन्न होने की तमाम वजह थीं। परिषद ने दो महत्त्वपूर्ण विधेयकों को मंजूरी दे दी। पहला केंद्रीय जीएसटी (सीजीएसटी)और दूसरा एकीकृत जीएसटी (आईजीएसटी)। उसने आईजीएसटी के लिए केंद्र और राज्यों के प्रशासनिक काम के बंटवारे को भी मंजूरी दे दी। एक अन्य विधेयक केंद्रशासित प्रदेश जीएसटी विधेयक को आगामी 16 मार्च को होने वाली बैठक में सामने रखा जाएगा। सीजीएसटी और आईजीएसटी को अब बजट सत्र के दूसरे हिस्से में संसद में पेश किया जाएगा। इनके पारित होते ही जुलाई में यह बहु प्रतीक्षित और पहले ही काफी पिछड़ चुका अप्रत्यक्ष कर सुधार की राह पर

बढ़ जाएगा। अब पूरा ध्यान जीएसटी के अधीन कर दर पर चला जाएगा। तमाम अन्य मोर्चों पर हो रही प्रगति से एकदम उलट इस मोर्चे पर अच्छी तरक्की देखने को मिली हैपरिषद इस बात पर सहमत हो गई है कि वह मसौदा जीएसटी कानून में एक ऐसा प्रावधान शामिल करेगी जो उच्चतम दर को 40 फीसदी पर सीमित करेगा। जबकि पूर्व में इसके लिए 28 फीसदी की दर तय की गई थी। हालांकि उच्चतम दर को कहीं ऊंचे स्तर पर रखा गया है लेकिन इससे 5,12,18 और 28 फीसदी की पिछले साल तय की गई बहुस्तरीय दरों पर कोई असर नहीं पड़ेगा। बल्कि इससे केंद्र और राज्य सरकारों के पास यह मौका होगा कि एसजीएसटी और सीजीएसटी दरों को बाद में बिना संसदीय मंजूरी के बढ़ाया जा सके। कहना नहीं होगा कि यह प्रावधान निराश करने वाला है। कर विशेषज्ञ और उद्योग जगत अगर इसके चलते भविष्य में अचानक कर दरों में बदलाव की आशंका जताते हैं तो वे कतई गलत नहीं होंगे। यह बात मजबूत कराधान के सिद्धांत के खिलाफ जाती है। इससे जीएसटी व्यवस्था की ओर प्रस्थान की वजह को भी नुकसान पहुंचता है। मूल विचार था एक ऐसी व्यवस्था बनाने का जहां तमाम वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए अप्रत्यक्ष कर की एक दर हो। ऐसा करने से कर प्रशासन का काम आसान होता, कर आधार बढ़ता और परिणामस्वरूप कर दर कम होती। जबकि इन सब बातों के बीच राजस्व में इजाफा होता।

परंतु अब हमारे पास ढेर सारे कर खांचे हैं जो अपने आप में मनमर्जी और लॉबीइंग को जन्म देंगे। ऐसा इसलिए क्योंकि वस्तु एवं सेवा प्रदाता चाहेंगे कि वे निम्नतम कर दायरे में आएं। ऐसे में यह संभावना भी है कि कर का स्तर दायरे के भीतर ही बढ़े। स्पष्टï है कि अगर बाद वाली घटना हुई तो हालात और बिगड़ेंगे। केंद्र और राज्य सरकारों में निर्णय लेने वालों को यह समझना होगा कि जीएसटी अपनाने से अर्थव्यवस्था को जो फायदे होने थे वे केवल तभी हाथ लगेंगे जब कर दरें कम रहेंगी। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि कर प्रशासन पारदर्शी हो तथा उसके बारे में आसानी से अनुमान लगाया जा सके। अगर ऐसी व्यवस्था अपनाई जाती है जिसमें कर अधिकारियों को मनमाने अधिकार हासिल होते हैं तो इसमें छेड़छाड़ की आशंका बरकरार रहेगी। इससे सरकार को राजस्व भी कम मिलेगा। निश्चित तौर पर कर दरें ही इकलौता ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां कर अधिकारियों को अधिक अधिकार हासिल हैं। बल्कि मुनाफाखोरी रोकने संबंधी एक प्रावधान भी इसमें शामिल है। यह प्रावधान इसलिए प्रस्तावित है ताकि उद्योग और व्यापार जगत कर दर में कमी से होने वाले लाभ को उपभोक्ताओं तक पहुंचने दें। यह नीति निर्माताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया एक ऐसा प्रावधान है जो अवधारणा के स्तर पर और परिचालन के स्तर पर, दोनों तरह समस्या पैदा करने वाला है।

THE HINDU

Date: 05-03-17

Crossing a bridge

India has done the right thing by deciding to attend the Indus Waters Treaty meet

Then in the fraught and volatile framework of India-Pakistan ties, the Permanent Indus Commission mandated to implement the 1960 Indus Waters Treaty (IWT) has met like clockwork, 112 times in 56 years, annually in each country. The commission has experts who look into issues and disputes on the ground over the utilisation of the waters of six rivers of the Indus system. Under the treaty, India has full use of the three “eastern” rivers (Beas, Ravi, Sutlej), while Pakistan has control over the three “western” rivers (Indus, Chenab, Jhelum), although India is given rights to use these partially as well for certain purposes. As a result, there should be little to comment in the normal course when India accepts Pakistan’s invitation to the next round of talks, as it

has for the Permanent Indus Commission in Lahore later this month. The move is welcome, as it denotes India's commitment to the treaty that has stood the test of time and war, and also displays New Delhi's sincerity on the issue of water-sharing, given that the IWT is seen to be a model in dispute management. In September last year, doubts had been raised over India's commitment after the terrorist attack on an army camp in Uri, killing 19 soldiers. In the days that followed, senior officials announced the suspension of talks until there was an "atmosphere free of terror" after Prime Minister Narendra Modi held a review meeting on the treaty to consider retaliatory measures against Pakistan for the attack, saying, "blood and water cannot go together". Mr. Modi repeated some of those angry sentiments at public rallies where he said India would not allow even a "drop of water" to go waste into Pakistan. The atmosphere was also charged after the government announced "surgical strikes" had been carried out along the Line of Control and subsequently pulled out from the SAARC summit in Pakistan, leading to fears of a freeze in bilateral ties.

In the event, the government has chosen wisely, with some encouragement from the World Bank and persistence by Pakistan, to step back from much of that rhetoric, and allow IWT commissioners from both countries to meet. The decision follows several other moves between India and Pakistan in the past few weeks indicating a softening of positions on some other issues as well: from a marked reduction in LoC firing, the regular annual exchange of nuclear lists, the release of prisoners by both countries, and India being part of the consensus to elect the Pakistani nominee as the SAARC Secretary-General this week. It would be premature to expect that any of these events, some of which are routine, consolidate a thaw in relations between the two countries. However, they reaffirm the high stakes that are woven into India-Pakistan relations, and the need to keep certain issues such as water-sharing above the politics of the moment.